महात्मा गाँधी और व्यावहारिक नीतिशास्त्र

अनामिका झा, डॉ0 तरूणेश्वर प्रसाद सिंह
शोध–छात्रा
विश्वविद्यालय दर्शनशास्त्र विभाग
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
डॉ0 तरूणेश्वर प्रसाद सिंह
'एसोसिएट प्रोफेसर'
दर्शन शास्त्र विभाग
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

महात्मा गाँधी भारतीय इतिहास में बीसवीं सदी के अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। ऐसा माना जा सकता है कि पूर्व और पश्चिम के जिस सामंजस्य का **श्रीगणेश स्वामी विवेकानन्द** ने किया था, उसे व्यापक सामाजिक–नैतिक आधार पर आगे बढ़ाने का कार्य महात्मा गाँधी ने किया। यद्यपि वे मूलतः नैतिकतावादी आध्यात्मिक व्यक्ति थें, परन्तु उनका कार्य–क्षेत्र समाज एवं राजनीति रहा। उन्होंने राजनीति को नैतिकता या धर्म से कभी अलग नहीं माना और सत्य, अहिंसा तथा सत्याग्रह के साधनों से भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का सफल संचालन किया।

यद्यपि वे **एकेडेमिक अर्थ** में कोई दार्शनिक नहीं माने जा सकते फिर भी एक व्यवहारिक नीतिशास्त्री, सुधारक, सामाजिक विचारक एवं क्रान्तिकारी चिन्तक उन्हें कहा जा सकता है। उन्होंने वैश्विक स्तर पर मानवीय स्वभाव में एक महान परिवर्तन लाने का कार्य किया। महात्मा गाँधी समकालीन व्यवहारिक दार्शनिकों की श्रेणी में आते हैं। वे समकालीन भारतीय दर्शन के इतिहास में अपने रचनात्मक एवं सुधारात्मक दार्शनिक विचारों के लिए विश्वविश्रूत हैं।

इन्होंने नैतिकता, समाज एवं राजनीति से संबंधित मूल्यों और आदर्शों का विवेचन स्पष्टरूपेण प्रस्तुत किया है जो इन्हें नैतिक दार्शनिक की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। आज धर्म के नाम पर तरह–तरह की पाखण्ड, मिथ्या–अचार, संघर्ष आदि दिखलाई पड़ते हैं जिसका समाधान इन लोगों ने अपने–अपने ढ़ंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इनके विचारों के अनुशलीन से धर्म, शासन,

राजनीति आदि के नाम पर तनाव और संघर्ष जैसी कुप्रवृतियाँ पर अंकुश लगाया जा सकता है। आज पूरा विश्व जिस तरह अशान्ति, बदले की भावना, अनुचित तरीके से धन–संग्रह, जाति भेद की समस्या, वर्ग–भेद की समस्या जीवन की अस्त–व्यस्तता, तरह–तरह के भय, कुण्ठा, व्यावहारिक दार्शनिक के अध्ययन को प्रस्तुत करके, इसका व्यापक प्रचार–प्रसार करके दिन–प्रतिदिन भयावह होती इन कुप्रवृत्तियों पर बहुत हद तक काबू पा सकते हैं। इनके नैतिक विचारों के अनुशीलन से हम बहुत हद तक सम्पूर्ण मानवता के कल्याण में सफल हो सकते हैं शर्त है कि उनकी तरह प्रायोगिक स्तर पर उतरना होगा।

व्यवहारिक नीतिशास्त्री के रूप में सर्वप्रथम यह देखा जा सकता है कि महात्मा गाँधी एक क्रान्तिकारी चिन्तक थें। उन्होंने मानवीय स्वभाव में एक महान परिवर्तन लाने का कार्य किया। उनकी आवाज आनेवाले युग की आवाज है। उन्होंने हमें एक निःशस्त्र नैतिक संसार में जीवन–यापन के लिए तैयार करने का कार्य किया। हमें अपने को संघर्ष और घृणा के संसार से बाहर निकालना है और सहयोग तथा सामंजस्य के आधार पर कार्य करने के लिए तैयार हो जाना है। उन्होंने युद्ध का विकल्प सत्याग्रह के रूप में प्रस्तुत किया है। संघर्ष की स्थितियों में उनका सत्याग्रह व्यक्ति से यह माँग करता है कि वह अपने प्रतिरोध को पूर्णतः सत्यनिष्ठा, प्रेम–व्यवहार और सहिष्णुता पर प्रतिष्ठित करे। उन्होंने स्वयं को कभी महात्मा नहीं कहा बल्कि सत्यशोधक कहा। उन्होंने जो भी कहा, उसे अपने जीवन में उतार कर दिखाया। शाश्वत मूल्यों को अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास किया और कहा कि आप सब लोग भी ऐसा कर सकते हैं। वस्तुतः उन्होंने अपनी सत्य साधना के साथ–साथ समाज का सुधार, गरीबी का उन्मूलन और देश को विदेशी परतंत्रता से मुक्त कराने के लिए सदैव संघर्ष किया। जॉन गुन्थर ने उनकी प्रशंसा करते हुए

उन्हें भारत का एक महान व्यक्तित्व माना है और बतलाया है कि उनकी पूजा ईश्वर की तरह की जाएगी। जॉन फेडरिक फिशर[2] ने भी इनकी महानता की ओर संकते किया है। ओ0 पी0 गोयल[3] ने भी उनकी प्रशंसा मुक्त कंठ से की है और उनके प्रमुख चिन्तन की ओर संकेत किया है।

नीतिशास्त्र उनके दर्शन का अत्यंत ही महत्वपूर्ण अंग है। अपने विवेचन में वे आधुनिक परिवेश के नैतिक मूल्यों विशेष रूप से सत्य और अहिंसा की महत्ता पर अधिक बल देते हैं। वे इन दोनों को एक–दूसरे से घनिष्ठ मानते हुए दोनों को एक सिक्के के ही दोनों पक्ष के रूप में स्वीकार करते हैं। वे बतलाते हैं कि अहिंसा को भावात्मक और निषेधात्मक दोनों रूपों में समझने की आवश्यकता है। अहिंसा उनके अनुसार केवल हत्या का निषेध नहीं है। यह तो इसका शाब्दिक और संकीर्ण अर्थ दीख पड़ता है। आवश्यकता इसे व्यापक और भावात्मक परिप्रेक्ष्य में देखने की है। उनके अहिंसा में प्रेम, करूणा, दया सभी समाहित प्रतीत होते हैं। इतना ही नहीं अहिंसा वाणी से भी संबंध रखता है। किसी को मानसिक क्लेश देना भी हिंसा का ही एक रूप है। इस तरह गाँधीजी का हृदय अत्यंत विशाल दीख पड़ता है। उनमें किसी प्रकार की संकीर्णता या भेदभाव की बात नहीं थी। तभी तो वे मानव मात्र के लिए करूणा और प्रेम का भाव रखते थे। इतना ही नहीं उनका स्पष्ट दृष्टिकोण था कि व्यक्ति से हमें घृणा नहीं करनी चाहिए। वे मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति में अच्छाई और बुराई दोनों होती है, उसमें आत्म और अनात्म दोनों ही तत्व विद्यमान रहते हैं। अतः व्यक्ति अपने आप में मूलतः अच्छा ही होता है इसलिए उसके प्रति घृणा का भाव रखना उचित नहीं है। अपने नैतिक सिद्धांत में वे जैनों के पंचमहाव्रत अर्थात सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्चर्य के अनुशीलन की बात करते हैं।

महात्मा गाँधी ने प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्रीय विचार को सरल तथा स्पष्ट रूप में संसार के सामने उपस्थित करने का सफलतापूर्वक प्रयास किया है। अहिंसा संबंधी विचार महात्मा गाँधी के नैतिक दर्शन का आधार माना जाता है, वे स्वयं बतलाते है कि अहिंसा हमारी जाति का नियम है जैसे हिंसा पशुओं का। इस और प्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक श्री एन0 के0 बोस′ ने भी संकेत करते हुए यह बतलाया है कि सत्य और अहिंसा उनके दर्शन का आधर स्तम्भ है। वे अहिंसा के बारे में यह स्पष्टतया बतलाते हैं कि आज मनुष्य का आध्यात्मिक विकास हुआ है जिसके परिणामस्वरूप वह हिंसा से अहिंसा की ओर निरन्तर अग्रसर हो रहा है। जैसा कि सर्वविदित है कि मनुष्य पहले मनुष्य का ही मांस खाता था किन्तु विकास क्रम में यह अवस्था बदली है अब मनुष्य पशुपालन तथा खेती कर जीवन–यापन करने लगा हैं। आज उसमें दया, प्रेम आदि की भावना विकसित हो चुकी है। अहिंसा के संबंध में गाँधीजी का दृष्टिकोण भावात्मक और अभावात्मक दाना दाख पड़ता है। भावात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत सभी जीवों से प्रेम को अहिंसा कहा जाता है जबकि अभावात्मक दृष्टिकोण से हिंसा न करना ही अहिंसा है। दोनों में वे भावात्मक पक्ष को अधिक श्रेष्ठ एवं आवश्यक मानते हैं। यहाँ वे समदर्शी मनुष्य को स्वीकार करते हैं और बतलाते हैं कि समदर्शी मनुष्य ही सभी जीवों को समान समझकर किसी का वध नहीं करता। उनका स्पष्ट कहना है कि अहिंसा समदर्शी होता है। क्योंकि उसके हृदय में प्राणि मात्र के प्रति दया, सहानुभूति और सौहार्द्र होता है। इस प्रकार अहिंसा को वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी दृष्टिकोण से आवश्यक बतलाते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गाँधी को महानायक बनाने में उनके जिस विचार ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, वह उनका अहिंसा का विचार था। इसीलिए देश की आजादी को अतिमहत्वपूर्ण लक्ष्य मानते हुये भी वे उसे हिंसा को त्याग कर ही प्राप्त करना चाहते थे। अंग्रेजों से लड़ने के लिए हिंसा के बदले अहिंसा को हथियार बनाने का कारण भी यही था। उन्होंने राजनैतिक आंदोलनों से लेकर सामाजिक व्यवहार तक में, सभी जगह अहिंसा का सामूहिक प्रयोग किया। यद्दपि भारतीय परंपरा में अहिंसा की अवधारणा प्राचीन काल से मौजूद रही है, परंतु आधुनिक काल में इसके सबसे बड़े प्रणेता गांधी ही हुए हैं। इस संबंध में रामधारी सिंह 'दिनकर' ने प्रकाश डालते हुए स्पष्टरूपेण यह लिखा हैं – ''अहिंसा की शिक्षा भारत के लिये पुरानी चीज है। केवल बौद्ध और जैन धर्मों में ही नहीं, अहिंसा की महिमा उनसे पूर्व उपनिरषदों में भी देखी जा सकती है। अहिंसा भारत की सभ्यता का सार है। वह हिन्दुओं का सनातन धर्म है। वह प्राग्वैदिक और आर्यो से पूर्व की उपलब्धि है। सच पूछिये तो अहिंसा का उपदेश भारत में इतने दिनों से दिया जा जरा है कि शेष विश्व भारत को अहिंसा और निवृत्ति का देश ही मान बैठा है।

किन्तु, इतना होते हुए भी, वर्तमान जगत् में अहिंसा के प्रवर्तक महात्मा गांधी माने जाते हैं। अहिंसा को लेकर गांधीजी को जो सुयश प्राप्त हुआ, वह बुद्ध के सुयश से अधिक है, क्योंकि बुद्ध ने यद्दपि, अहिंसा का पालन स्वयं किया तथा शिष्यों से भी करवाया, किन्तु संतों को अहिंसा–वव्र के पालन में वह कठिनाई नहीं होती, जो गृहस्थ दुस्साध्य नही होता, जितना समष्टि के लिए होता है। अहिंसा परम धर्म के रूप में युगों गृहस्थ की होती है। फिर यह भी है कि व्यक्ति के लिए अहिंसा का पालन उतना से पुजित चली आ रही थी। किन्तु, गांधीजी के पूर्व किसी ने भी समष्टि के धरातल पर अथवा कोटि–जन– व्यापी महाआंदोलनों के भीतर से, अहिंसा

का प्रयोग नहीं किया था। गांधीजी ने यह प्रयोग किया और उनके प्रयोग से संसार के असंख्य लोगों में यह आस्था उत्पन्न हुई कि अहिंसा की साधना सामूहिक कार्यों में भी चल सकती है।''

जैसा कि हमने पहले भी संकेत किया है कि गांधी अपने नैतिक विवेचन में सत्य और अहिंसा दोनों पर बल देते है। यही कारण है कि वे यह बतलाते हैं कि अहिंसा सत्य से भिन्न नहीं है। आज के एक विशेष अर्थ में दोनों अभिन्न हैं। इसीलिए वे यह स्वीकार करते हैं कि सत्य की खोज में वे अहिंसा तक पहुंच गये हैं। सत्य को नैतिक दृष्टि से अति उच्च मूल्य और तत्वमीमांसीय अर्थ में सत् के अनुरूप समझा गया है। सत् का अर्थ सही ज्ञात होता है। इसलिए भारतीय तत्व–विवेचन में सत्य को स्वतः प्रकाश माना गया है। गांधी सत्य के इन सभी संदर्भों को अपनी सत्य की अवधारणा में समेटते हुए उसे अहिंसा से अवियोज्य रूप से संबंधित बतलाते हैं। वास्तव में गांधी के लिए सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तभी तो वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं – ''सत्य का पूर्ण आभास अहिंसा के पूर्ण साक्षात्कार से ही संभव है।'' इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी की अहिंसा मात्र निषेधात्मक अमंगलहीनता नहीं है, बल्कि अपनी भावात्मक स्थिति में वह अमंगलकारी का भी मंगल करने वाली है। गाँधी की स्पष्ट मान्यता थी कि अहिंसा के बल पर हम सभी तरह का कल्याण करने में सफल हो सकते है।

गाँधीजी स्पष्टरूपेण यह बतलाते हैं कि अहिंसा कमजोर लोगों के द्वारा अपनाया जानेवाला शस्त्र नहीं है बल्कि यह शक्तिशाली और निर्भय लोगों का गुण है। यह उसके लिए है जो हिंसा का उत्तर हिंसा से दे सकता है, बल का प्रतिकार बल से कर सकता है, परंतु वह ऐसा करता नहीं, बल्कि हिंसा और बल का त्याग

कर इनरका उत्तर प्रेम और करूणा से देता है। इसीलिए गांधी अहिंसा का जन्म भय से नहीं, प्रेम से मानते हैं और उसे अत्यंत सक्रिय कहते हुये उसमें कायरता और दुर्बलता को कोई स्थान नहीं देते। इतना ही नहीं, वे यह भी स्वीकार करते हैं कि यदि कायरता और हिंसा के बीच चुनाव करना हो तो हमेशा हिंसा को चुनना चाहिए। गाँधीजी के इस विचार की ओर संकेत करते हुए रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा है – ''अहिंसा, वास्तव में शक्तिशाली और वीर का गुण है, कायरों का नहीं। गांधीजी ने कहा है, मेरी अहिंसा अत्यंत क्रियाशील शक्ति है। उसमें कायरता तो क्या, दुर्बलता के लिए भी स्थान नहीं है। यही नहीं, प्रत्युत, गांधीजी तो यह भी कहते हैं कि जहां सारा चुनाव केवल कायरता और हिंसा के बीच सीमित हो, वहां मैं हिंसा का समर्थन करूंगा।''

वस्तुतः गाँधीजी ने श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा महावीर की अहिंसा–नीति को बाद के शताब्दियों में पुनजीवित किया और अहिंसा पर आधारित एक नवीन दृष्टिकोण को अपनाया। इसी की सहायता से उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय चिंतन– परंपरा में अहिंसा प्राग्वैदिक काल से चली आ रही है, जो वेद और उपनिषद् काल से होते हुए जैन और बौद्ध काल में अत्यंत विकसित रूप में प्रकट हुई। इसी आधार पार आधुनिक काल में गांधी ने अपने अहिंसा–दर्शन का प्रतिपादन कर उसे अत्यंत व्यापक बनाया। वस्तुतः प्राग्वैदिक काल में अहिंसा की जो पतली–सी धारा फूटी थी, वह वेद–उपनिषद् होते हुए जैन–बौद्ध दर्शनों में अत्यधिक विकसित हुई और अंततः गांधी के यहां आकर सागर में रूपान्तरित हो गई। ऐसा इसलिए हुआ कि गांधी के पहले अहिंसा व्यक्तिगत पालन के रूप में प्रचलित थी, गांधी ने उसका सामूहिक

प्रयोग किया। उन्होंने अहिंसा के राजनैतिक उपयोग के द्वारा भारत को आजादी दिलाकर इसे क्रांति के सफल हथियार के रूप में स्थापित कर दिया। इसलिए बीसवीं सदी में गांधी संभवतः अकेले व्यक्ति हैं, जिन्होंने व्यक्तिगत जीवन से लेकर सार्वजनिक जीवन तक में अहिंसा के महत्व और प्रभाव को उतारने का अभूतपूर्व काम किया।

गाँधी के द्वारा अपनाया जानेवाला अहिंसा का सिद्धान्त उनके दर्शन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके द्वारा प्राणीमात्र की एकता की स्थापना की जा सकती है। यही कारण है कि वे अहिंसा को व्यापक अर्थ में बतलाने की चेष्टा करते हैं। वस्तुतः महात्मा बुद्ध तथा दूसरे लोगों ने जिस तरह अक्रोध आदि का प्रचार 'धम्मपद' की निम्नलिखित पंक्तियों में किया है –

''अक्कोधेन जिने क्रोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं।।''[9]

उन्हीं आदर्शों का प्रसार तथा प्रयोग महात्मा गाँधी ने इस युग में किया है। इस तरह हम देखते हैं कि गाँधीजी ने प्राचीन ऋषियों तथा चिन्तकों की भाँति समकालीन युग में नैतिक आदर्शों की स्थापना के लिये अथक प्रयास किया। उन्होंने नैतिकता के साथ–साथ धर्म, चारित्रिक शुद्धता, सांस्कृतिक उत्थान की बातों पर भी विशेष बल दिया। इस संबंध में माचवे एवं दफ्तुआर की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं – ''गांधीजी इस देश के राजनीतिक नेता तो थे ही, साथ ही, वे सांस्कृतिक गुरू, धर्म के संस्थापक और नैतिकता के उन्नायक थे। उन्होंनं अपने जीवन में उन सिद्धान्तों और आदर्शों का सफल प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया कि सत्य और अहिंसा, नैतिकता और आत्मबल तथा चारित्रिक शुद्धि के द्वारा अन्याय और अनीति पर, पाशविकता और प्रमत्तता पर विजय प्राप्त की जा सकती है।''[10]

गाँधीजी के नैतिक विचारों के अन्तर्गत विभिन्न तरह की मानवीय अवधारणायें से श्रेष्ठ होता है। यही कारण है कि जबतक मनुष्य पाशविक साधनों का प्रयोग करता सम्मिलित थी। वे स्पष्टतया इस बात की स्वीकार करते है कि आत्म–बल पशु–बल है, तबतक वह मनुष्य नहीं कहला सकता। जैसा कि हम जानते है पशु अपना अनिष्ट करने वालों का सामना तथा उनसे अपनी सुरक्षा नख–दंत आदि प्राकृति–प्रदत्त हथियारों से करता है। इसीलिए उसके पास हिंसा के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचता। परंतु इसके विपरीत मानव पशु से न केवल भिन्न है, बल्कि श्रेष्ठ भी है। अतः उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान उन तरीकों के द्वारा करे जिनका प्रयोग केवल वही कर सकता है, पशु नहीं और अहिंसा ऐसा ही तरीका है। इसीलिए गांधी अहिंसा को त्याग कर भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने के हिमायती नहीं थे, क्योंकि ऐसा करने से मनुष्यता के विकास में बाधा आती जबकि गांधी के सामने देश की स्वतंत्रता से भी बड़ा लक्ष्य मनुष्यता के उत्थान का था। वे मनुष्य की पाशविक वृत्ति का परिमार्जन कर उसे उद्दात्त बनाना चाहते थे। इसके लिए यह बताना जरूरी था कि मनुष्य जिन लक्ष्यों की प्राप्ति हिंसा जैसे पाशविक साधनों द्वारा करता है उन्हें वह अहिंसा जैसे मानवोचित साधनों द्वारा भी प्राप्त कर सकता है। यहाँ पुनः दिनकर की निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत किया जा सकता है – ''गांधीजी का मुख्य उद्देश्य अपने देशवासियों के कष्टों का निवारण नहीं, प्रत्युत, मनुष्य के पाशवीकरण का अवरोध था। घृणा, क्रोध और आवेश, ये पशुओं को भी होते हैं और वे भी अपने प्रतिपक्षी का सामना उन शस्त्रों से करते हैं, जो प्रकृति की ओर से उन्हें मिले हुए हैं। लेकिन, मनुष्य पशु से भिन्न है, अतएव उचित है कि वह अपने आवेगों पर

नियंत्रण लगाये और अपने दैनिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने में उन उपायों से काम ले, जो पशुओं के लिए दुर्लभ, किन्तु, मनुष्य के लिए सुलभ हैं।''

वस्तुतः गाँधीजी का धर्म और नैतिकता सम्बन्धी विचार आज के अनुप्रयुक्त नैतिक आन्दोलन से काफी मेल खाता है। यही कारण है कि उन्होंने अपने नैतिक विवेचन में व्यावहारिक धर्म की महत्ता की ओर भी इशारा किया है। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि गाँधीजी अपने जीवन में नैतिकता और धर्म दोनों को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। इसलिए स्वाभाविक रूप से उनके व्यवहार, धर्म और नैतिकता में घनिष्ठ संबंध है। इस आशय का विचार प्रो0 डी0 एम0 दत्त[12] ने भी स्पष्टः व्यक्त किया है। जिस तरह स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को जीवन के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण माना है उसी तरह गाँधीजी भी अपने नैतिक–व्यावहारिक धर्म को जीवन में आवश्यक और महत्वपूर्ण बतलाते हैं। पुनः हिंगेरानी[13] ने भी गाँधीजी के धर्मसंबंधी विचारों की ओर संकेत किया है और बतलाया है कि धर्म के अभाव में व्यक्ति बिना जड़ की तरह रहता है। वस्तुतः यह जीवन का आधार है। डॉ0 राधाकृष्णन[14] ने भी इस बात की पुष्टि की है और बतलाया है कि गाँधीजी के धर्म संबंधी विचार से हमें बहुत कुछ प्रेरणा मिलती है। उनके अनुसार धर्मविहीन जीवन सिद्धान्तरहित जीवन होता है। उन्होंने गाँधीजी की महानता के बारे में स्पष्टतया बतलाया है कि गाँधीजी मानव जाति के वैसे महान व्यक्तियों में थे जिन्हें किसी देश की सीमा में बाँधना उनके साथ अन्याय होगा। इस तरह वे गाँधीजी के दृष्टिकोणों को व्यापक और उदार मानते हुए उनकी महत्ता, उपयोगिता और धर्म संबंधी विचारों पर प्रकाश डालते हुए उन्हें अमर व्यक्तियों की कोटि में रखते हैं। ऐसा मानना सत्य से दूर नहीं होगा कि उन्होंने सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भी ईश्वर की आस्था और नैतिक धर्म की महत्ता को अपने ढ़ंग

से माना है और धर्मवादी तथा ईश्वरवादी पृष्ठभूमि में प्रयोगात्मक स्तर पर समाज, राष्ट्र आदि की सेवा भी की है।

इस प्रकार नैतिक दर्शन में वे साधन की भी महत्ता और पवित्रता की आवश्यकता को स्वीकारते हैं। यह उनके प्रायोगिक जीवन और दर्शन के अनुरूप है। अतः गाँधीजी के प्रायोगिक जीवन और दर्शन के आदि से अन्त तक नैतिकता की बात दृष्टिगत होती है। वस्तुतः उनके जीवन की विशिष्टता इस बात में भी दीख पड़ती है कि उन्होंने नैतिक सद्‌गुणों और धर्मों के अनुरूप ही अपने जीवन को ढ़ाला है। उनका दृष्टिकोण इस संबंध में केवल सैद्धांतिक और बौद्धिक नहीं है इसलिए पूरी तरह अनुप्रयुक्त है। उन्होंने सद्‌गुणों की व्याख्या केवल सैद्धांतिक दृष्टिकोण से नहीं की है, उसे अपने जीवन में भी स्थान दिया है। वे ईश्वरवादी तथा संत प्रवृति के विचारक हैं मगर पूरी तरह सामाजिक, व्यावहारिक और नैतिक है। इसलिए स्वाभाविक रूप से वे नैतिकता की बात केवल बाहरी दृष्टिकोण से नहीं कर रहें हैं। वे जो नैतिक समझते हैं अपने व्यक्तित्व के अन्दर से उसे व्यवहार में उतारते हैं। इस प्रकार उनका नीतिशास्त्र संबंधी विवेचन तकनीकी नीतिशास्त्रियों से भिन्न प्रतीत होता है जबकि अनुप्रयुक्त रूप से अजूबा नैतिक–दर्शन प्रतीत होता है। वे दर्शन के विद्वानों की तरह नैतिक क्रिया और ऐच्छिक विशेषता का विश्लेषण नहीं करके नैतिक मूल्यों और सद्‌गुणों की महत्ता तथा आवश्यकता पर हृदय से आवाज उठाते हैं। इस प्रकार उनके अनुसार नैतिकता गहरे में हमारी आत्मा से संबंधित दृष्टिगत होती है।

इस प्रकार स्पष्टतया यह बतलाया जा सकता है कि साधन–साध्य विचार गाँधीजी के नैतिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। उपयोगितावादी विचारक

साध्य को ही सब कुछ मानते हैं – उनके लिए साधन की पवित्रता गौण बात है। जबकि दूसरी ओर महात्मा गाँधी के व्यावहारिक नीतिशास्त्र में साधन तथा साध्य दोनों की समान महत्ता है। किसी भी नैतिक कार्य के सम्पन्न होने के लिए साध्य और साधन दोनों आवश्यक है। गाँधीजी की स्पष्ट मान्यता है कि साधन ही साध्य को औचित्य प्रदान करता है। साधन बीज है और साध्य वृक्ष, इसलिए जो संबंध बीज और वृक्ष में है वही संबंध साधन और साध्य में है। वस्तुतः साधन और साध्य की एक अनवरत श्रृंखला है। जो एक साधन का साध्य हो सकता है वही किसी अन्य साध्य का साधन भी हो सकता हैं। हमें सर्वोच्च साध्य का ज्ञान कभी नहीं हो सकता है। हमें तो साधनों के ऊपर ही आधिपत्य एवं नियंत्रण है। फलस्वरूप पवित्र साध्य के लिए पवित्र साधन आवश्यक एवं अपरिहार्य है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि अगर साधन गलत है तो सही लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकता है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कभी भी अहिंसा और नैतिकता से नहीं भागना चाहिए। इस प्रकार गाँधीजी साधन का पवित्रता की बात स्पष्टरूपेण करते हुए दीख पड़ते हैं।

वस्तुतः गाँधीजी के व्यावहारिक नीतिशास्त्र को हम नैतिक–सामाजिक कटिबद्धता कह सकते हैं क्योंकि उनका नैतिक विचार मानव मूल्यों की स्थापना और प्रयोग से संबंधित है, न कि उनकी व्याख्या से। मानव–मूल्यों की स्थापना वे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों में करते हैं। हमें आशा है कि यदि गाँधीजी के नैतिक विचारों के व्यावहारिक रूप पर बल दिया जाये तो वह हमारे व्यक्तिगत, समूहगत, राष्ट्रगत दैनिक जीवन व्यापार को परिष्कृत, सुव्यवस्थित एवं सुसंस्कृत बनाने में सक्षम हो सकता है। इनके द्वारा प्रतिपादित नैतिक जीवन–दर्शन के बल पर हम सन्तुलित वाश्वक जीवन निर्माण एवं सामाजिक विकास के चरम विन्दु तक पहुँच सकते हैं।

संक्षिप्त सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

(1) लाल, वसन्त कुमार, समकालीन भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वराणसी, प्रथम संस्करण 1991, पृ0 118.

(2) Datta, Dro D.M. : The Philosaphy of Mahatma Gandhi, Calcutta University Press, P. - 37, 38.

(3) दर्शन – मिश्रा डॉ0 अर्जुन : दर्शन की मूल धाराएँ, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल 1983.

(4) सिन्हा, जे0 एन0 : नीतिशास्त्र, प्रकाशक जयप्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी, गढ़नीचन्दी चौराहा, गढ़रोड, मेरठ तेरहवाँ हिन्दी संस्करण, 1989.

(5) गाँधी, मोहनदास करमचन्द : यंग इण्डिया, 3–9–1925
यंग इण्डिया, 1925
हरिजन इण्डिया, 29–8–1936
हरिजन इण्डिया, 28.09.1934
यंग इण्डिया, भाग – 3
हरिजन 25 अगस्त, 1940
स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी।

(6) सिंह रामगोपाल : डॉ0 भीमराव अम्बेदकर,
समाज वैज्ञानिक, मध्य प्रदेश,
हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल,
प्रथम संस्करण, 1992.

(7) Sheeches and Writings of Jimah, Page - 125
(मद्रास, गणेश एण्ड कम्पनी, 1917)

(8) Proceedings of the Londan Round Table Conference 1930-31, P. 98 - 106.